

विकास और प्रगति: आर्थिक और सामाजिक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 विकास और प्रगति की व्याख्या
- 1.3 विकास और प्रगति पर कॉम्टे, मोर्गन, मार्क्स और स्पेंसर
- 1.4 विकास और प्रगति पर टोनीज, दुर्गाइम, वेबर, हॉबहाउस और पारसंस
- 1.5 वृद्धि परिवर्तन और आधुनिकीकरण के रूप में विकास
- 1.6 विकास के पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी-दुनिया के मॉडल
- 1.7 विकास के सामाजिक एवं मानवीय आयाम
- 1.8 विकास रणनीतियों में प्रतिमानात्मक बदलाव
- 1.9 सारांश
- 1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विकास और प्रगति के परिप्रेक्ष्यों को समझ सकेंगे;
- वृद्धि और आधुनिकीकरण के रूप में विकास को स्पष्ट कर सकेंगे;
- विकास के सामाजिक एवं मानवीय आयामों पर रोशनी डाल सकेंगे; और
- विकास संबंधीवाद संवाद में प्रतिमानात्मक बदलाव को स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

किसी व्यक्ति या समूह की उन्नति को दर्शाने के लिए विकास और प्रगति की अवधारणाओं को सकारात्मक रूप में प्रयोग किया जाता है। मानव समाज ने एक लंबा सफर तय किया है। उसकी तरह विकास की अवधारणा ने भी लंबा सफर तय किया है। सदियों तक विकास को प्रगति, तत्पश्चात् वृद्धि, बदलाव, परिवर्तन, धारणा-अंतरण, आधुनिकीकरण आदि के रूप में जाना गया है। अब इसे हम (आर्थिक के साथ-साथ) सामाजिक और मानव विकास के रूप में देखते हैं। मानव समाज की विकास यात्रा कई चरणों से होकर गुजरी है। जैसे असभ्य से बर्बरता, बर्बरता से सभ्यता, धर्मविज्ञानी (theological) से पराभौतिक (metaphysical), पराभौतिक से वैज्ञानिक, सरल से जटिल, जटिल से और जटिल, एकरूप से बहुरूप, अविकसित से विकसित, प्राचीन से सामंतवादी, सामंतवादी से पूंजीवादी, पारंपरिक प्रौद्योगिक यांत्रिक समेकता (Mechanic solidarity) से औद्योगिक (जैव समेकता organic solidarity) प्राक्-विवेकी, प्राक्-पूंजीवादी से विवेकी पूंजीवादी (rational capitalist) आदिम से मध्यवर्ती, ग्रामीण से नगर इत्यादि। समाजशास्त्रीय साहित्य में इन सोपानों को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों या विचारधाराओं से देखा और दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से समझा गया है। इस इकाई में प्रगति और विकास के प्रमुख परिप्रेक्ष्यों पर रोशनी डाली गई है। पहले हमने यह जाना है कि मोर्गन, कॉम्टे, स्पेंसर, हॉबहाउस, मार्क्स, वेबर, मैकक्लीलैंड दुर्खाइम और पारसंस जैसे विचारकों ने अपने विकासवादी सिद्धांतों में इन धारणाओं को कैसे समझा है। इसके बाद हमने यह समझाने का प्रयास किया है कि समकालीन विश्व ने विकास को आर्थिक और सामाजिक मायनों में कैसे समझा है।

विकास के पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी दुनिया के मॉडलों को विस्तार से समझाने के अलावा हमने इसकी आर्थिक धारणा को भी स्पष्ट किया है, जिसमें सकल घरेलू उत्पाद को विकास का पैमाना माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के सत्तर के दशक में विकास संबंधी परिप्रेक्ष्यों में प्रतिमानात्मक बदलाव (paradigm shift) आया। इसके फलस्वरूप विकास के उभरते परिप्रेक्ष्य में मानव और सामाजिक विकास की धारणाओं ने मुख्य स्थान हासिल कर लिया है। उपेक्षित लोगों और महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में शामिल करने और विकास में राज्य की भूमिका को फिर से परिभाषित करने की दिशा में नई रणनीतियां भी सामने आई हैं। इसलिए इकाई के आखिरी भाग में विकास की पुनर्प्रतिपादित रणनीति यानी उपेक्षित और संबंधित मुद्दों को समझने का प्रयास किया गया है।

यह इकाई इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। इसलिए हमने इसमें कई मुद्दे उठाए हैं। आगे की इकाइयों में इन मुद्दों का विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा। आइए पहले विकास और प्रगति की अवधारणाओं को समझ लें।

1.2 विकास और प्रगति की व्याख्या

जब हम विकास की बात करते हैं तो उससे जुड़ी अनेक धारणाओं से हमारा सामना होता है। यथा क्रमविकास (evolution) प्रगति (progress) परिवर्तन, वृद्धि, कार्यांतरण इत्यादि। असल में हमारे लिए इन सभी धारणाओं को अच्छी तरह से समझ लेना जरूरी है, हालांकि इन्हें हम जाने-अनजाने एक दूसरे की जगह प्रयोग करते हैं।

क्रम-विकास की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'इवॉल्वेयर' (evolvere) से हुई है जिसका अर्थ संस्कृत शब्द 'विकास' से काफी जुड़ा है। क्रम-विकास की अवधारणा को किसी सजीव प्राणी यानी पेड़-पौधे, जंतु इत्यादि की आंतरिक वृद्धि के अर्थ में प्रयुक्त होती है। आंतरिक वृद्धि को आनुक्रमिक संक्रवण के विभिन्न चरणों के रूप में भी देखा जाता है। उदाहरण के लिए बीज पहले पौध में विकसित होते हैं, इसके बाद पौधों फिर पेड़ों में विकसित होते हैं। तत्पश्चात उनमें परिपक्वता आती है और फिर जरण की प्रक्रिया शुरू होती है।

दूसरी ओर प्रगति की धारणा का प्रयोग 'आगे बढ़ने' के अर्थ में किया जाता है, संस्कृत में जिसे 'प्रगत' कहा जाता है। इसलिए प्रगति का मूल अर्थ किसी वांछित लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ना या उन्नति करना है। प्रगति और वांछित लक्ष्य अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जैसे स्वास्थ्य के क्षेत्र में ज्ञान अर्जन में प्रगति, किसी स्थान की दिशा में हमारा आगे बढ़ना इत्यादि। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगति को नैतिक अर्थ में भी लिया जाता रहा है। इसका अभिप्राय उन परम मूल्यों की दिशा में आगे बढ़ना है जिनकी प्राप्ति के लिए मानवजाति युगों से यत्न कर रही है (गिस्बर्ट 1994: 467)। लेकिन मानव के नैतिक मूल्य और उनको जांचने परखने के मानक भी उतने हैं विविध हैं जितने कि मानव समाज से विविधताएँ प्रगति के विभिन्न सूचकों की प्राप्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

विकास और प्रगति की अवधारणाओं को समाजशास्त्रियों ने विविध परिप्रेक्ष्य से जाना है। जैसे द्वंद्व, प्रकार्यात्मक नव-द्वंद्व, संरचनात्मक प्रकार्यात्मक इत्यादि। इस इकाई में मिले इन परिप्रेक्ष्यों को आरंभिक परिप्रेक्ष्य का दर्जा देंगे जिनमें हम मार्क्स, वेबर, दुर्खाइम और पारसंस को शामिल करेंगे। अगली इकाई में परिवर्तन और आधुनिकीकरण पर चर्चा करते हुए हम इन सभी विचारकों को विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर वर्गों में बांटेंगे।

1.3 विकास और प्रगति पर कॉम्टे, मॉर्गन, मार्क्स और स्पेंसर

मानव शास्त्रियों और समाजशास्त्रियों का आरंभिक विषय, विकासवादी दृष्टि से मानव समाज

के विकास और प्रगति का अध्ययन करना था। मानव समाज की मात्रा विकास और प्रगति के जिन जिन चरणों से होकर गुजरी है उनका अध्ययन करने के लिए आज भी मॉर्गन, कॉम्टे स्पेंसर, मार्क्स, दुर्खीम, वेबर जैसे अनेक चिंतकों के महान विचारों को लिया जाता है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में इतिहास के दर्शन को, जिससे आगे चलकर प्रगति की सामान्य अवधारणा विकसित हुई, विशेषकर हेगेल और सेंट-सिमोन के लेखों से भारी महत्ता हासिल हुई। कालांतर में अगस्त कॉम्टे, कार्ल मार्क्स इत्यादि दार्शनिकों के कार्य पर हमें इन विद्वानों की छाप देखने को मिलती है। आइए पहले सेंट-सिमोन के शिष्य अगस्त कॉम्टे के कार्य पर दृष्टि डालते हैं।

अ) अगस्त कॉम्टे (1798-1857)

समाजशास्त्र का जनक कहे जाने वाले अगस्त कॉम्टे ने मानव समाज में होने वाले परिवर्तन, विकास और प्रगति को अपने अध्ययन का विषय बनाया। समाज के अध्ययन को उन्होंने दो भागों में बाँटा। सामाजिक स्थैतिकी (समाज की प्रमुख संस्थाओं या संस्थानिक समष्टि का अध्ययन) और सामाजिक गतिकी (विकास और परिवर्तन का अध्ययन) कॉम्टे की दृष्टि में मानव समाज और इतिहास एक दूसरे से अलग नहीं थे। उनके लिए यूरोप का इतिहास मानवजाति के इतिहास का ही पर्याय था। (अरन 1965:65)। इसी के अनुरूप उन्होंने कई सामान्यीकरण किए।

कॉम्टे का कहना है कि कुछ खास किस्म के समाज खत्म हो रहे थे, तो वहीं और समाज जन्म ले रहे थे। खत्म होने वाला समाज धर्मविज्ञानी और सैन्य समाज थे। मध्ययुगीन समाज को कैथोलिक चर्च द्वारा प्रतिपादित लोकातीत आस्था ने एकता में बांधा था। धर्मविज्ञानी चिंतन उस सैन्य गतिविधि की प्रधानता के समकालीन था, जिसकी अभिव्यक्ति इस बात में होती थी कि सबसे ऊंचा दर्जा योद्धाओं को दिया जाता था। जिस समाज का जन्म हो रहा था वह वैज्ञानिक और औद्योगिक समाज था। इस समाज में वैज्ञानिकों ने धर्मविज्ञानियों का स्थान ले लिया। योद्धाओं का स्थान, उद्योगपतियों, व्यापारियों, प्रबंधकों और वित्तदाताओं ने ले ली। असल में आदमी ने जिस क्षण से वैज्ञानिक ढंग से सोचना शुरू किया, उसी क्षण से समूहों ही मुख्य गतिविधि मनुष्य के विरुद्ध मनुष्य का युद्ध खत्म हो जाती है और प्रकृति से संघर्ष, यानी प्राकृतिक संस्थानों के व्यवस्थित दोहन का रूप धारण कर लेती है। (वही 64)।

मानव विकास के तीन चरणों के सिद्धांत का प्रतिपादन करके कॉम्टे ने प्रगति की धारणा को एक विश्वव्यापी आयाम और गहरा अर्थ दिया। उनका मानना था कि मानव मस्तिष्क प्रगति के तीन चरणों से होकर गुजरता है। ये हैं: धर्म-विज्ञानी, पराभौतिक और सकारात्मक। धर्म-विज्ञानी अवस्था में मनुष्य किसी भी घटना को ऐसी शक्तियों से जोड़कर देखता है, जो मनुष्य के तुलनीय हैं। पराभौतिक अवस्था में मनुष्य किसी घटना को प्रकृति से जोड़कर देखता है। सकारात्मक वैज्ञानिक अवस्था में किसी घटना और उसकी कड़ियों को मनुष्य तर्क की कसौटी में परखता है। कॉम्टे के लिए वह विधि जिसने गणित, खगोलशास्त्र, भौतिकी, रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान पर विजय पाई है अंततः राजनीति में भी सफल होगी और समाज के सकारात्मक विज्ञान की स्थापना करेगी, जिसे हम समाजशास्त्र कहते हैं। (वही 66)।

समाजशास्त्र को व्यवस्था और प्रगति के विज्ञान के रूप में परिभाषित और उसे सामाजिक स्थैतिकी (व्यवस्था) और सामाजिक गतिकी (प्रगति) में विभाजित करते हुए अगस्त कॉम्टे ने यही निष्कर्ष निकाला था कि व्यवस्था के जरिए ही प्रगति संभव है। औद्योगिक क्रांति के आरंभिक वर्षों में हो रहे सामाजिक बदलावों को उन्होंने एक विकासवादी प्रक्रिया के रूप में जानने-समझने का प्रयास किया। विकास का सिद्धांत कहता है कि समाज अनेक चरणों से होकर गुजरते हैं, जो एक सरल रूप से शुरू होते हैं और विकास की प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वे जटिल होते जाते हैं। इसी के आधार पर कॉम्टे ने विकासवादी परिवर्तन का सिद्धांत गढ़ा और क्रमिक परिवर्तन को बुद्धि-कौशल, विशेषकर वैज्ञानिक सोच के विकास से जोड़ा।

'तीन अवस्थाओं का सिद्धांत' यह कहता है कि बौद्धिक प्रगति के साथ नैतिक विकास भी होता है जिसमें सामाजिक संस्थाओं में भी अनेक परिवर्तन होते हैं। कॉम्टे ने भौतिक और नैतिक प्रगति को प्रगति का अनिवार्य स्वरूप माना है और सामाजिक परिवर्तन को आंतरिक शक्तियों का परिणाम माना है। यह परिवर्तन एकरेखीय बेड़ा है।

ब) मोर्गन (1818-1881)

मानव समाज के निश्चित क्रम को व्यवस्थित ढंग से रखने का काम सबसे पहले मोर्गन ने किया था। उन्होंने तीन युगों का पता लगाया जिनसे होते हुए मानव समाज गुजरा। ये हैं: असभ्यावस्था (जंगलीपन), बर्बरता और सभ्यता जीविकोपार्जन के साधनों के विकास में हुए प्रगति के आधार पर उन्होंने जंगलीपन और बर्बर-अवस्था निम्न, मध्य और उच्च क्रमों में विभाजित किया। उनका कहना था, "इस दिशा में उनकी प्रगति पर पृथ्वी पर मानव की श्रेष्ठता का पूरा सवाल टिका था। मनुष्य ही एकमात्र प्राणी हैं, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि उसने भोजन के उत्पादन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। मानव प्रगति के महायुगों को कमोबेश सीधे जीविकोपार्जन के स्रोतों के विस्तार से जोड़ा गया है"। (एंगेल्स 1970 : 204) आइए थोड़ा और विस्तार से जानते हैं कि मनुष्य ने जंगलीपन में बर्बरता की अवस्था और फिर सभ्यता की अवस्था तक की यात्रा किस तरह की।

जंगलीपन या असभ्यावस्था

- क) निम्नावस्था: इस चरण में मनुष्य उष्ण या उपोष्ण वनों में पेड़ों पर रहता था। कंद, मूल और फल उसका भोजन थे।
- ख) मध्यावस्था: इस चरण में आकर आदमी ने आग और खाने में मछली का उपयोग शुरू कर दिया था। नए भोजन से उन्हें एक स्थान पर रहने की बाध्यता नहीं रही और आदमी का भौगोलिक आवागमन शुरू हो चला। इस चरण पर मनुष्य का मुख्य हथियार अपरिष्कृत पत्थर थे।
- ग) उच्चावस्था: मनुष्य ने धनुष और तीर का आविष्कार कर लिया था। उसके भोजन में अब वन्य जंतु शामिल हो चुके थे और आखेट उसका सामान्य पेशा बन चुका था। काठ के घड़े और बर्तनों का चलन शुरू हो चुका था।

बर्बरता

- क) निम्नावस्था: कुम्हारी (मिट्टी के बर्तन बनाने की कला) की शुरुआत से आदमी ने बर्बरता के चरण में प्रवेश किया।
- ख) मध्यावस्था: इसका आरंभ पूर्व में पशुओं को पालतू बनाने से और पश्चिम में खाद्य पौधों की खेती से हुआ, सिंचाई के साधनों की शुरुआत हुई। मकान बनाने के लिए धूप में खुदाई ईंटों और पत्थरों का प्रयोग।
- ग) उच्चावस्था: यह एक प्रति संक्रमणकालीन अवस्था है। इसकी शुरुआत लौह अयस्क के प्रगलन (गलाने) से होती है और वर्णानुक्रमिक लेखन के आविष्कार और साहित्यिक दस्तावेजों के लिए इसके उपयोग के जरिए सभ्यता में पहुँचती है। पशु द्वारा खींचे जाने वाले लोहे की फाल, बड़े पैमाने पर जमीन में खेती, जीविकोपार्जन के साधनों में असीमित वृद्धि, जनसंख्या में तेज वृद्धि इस चरण की विशेषता रही।

सभ्यता

इस अवधि में प्राकृतिक उत्पादों के और दोहन तथा परिआर्जन, उद्योग और कला के ज्ञान हासिल हुआ (वही: 209)। अपनी विकासयात्रा के इस चरण में मानव समाज ने जीवन के विभिन्न पहलुओं को परिष्कृत बना लिया है।

स) कार्ल मार्क्स (1818-1883)

पिछली अवस्थाओं में पूंजीवादी समाज की प्रगति उसकी संरचना और कार्यप्रणाली की व्याख्या कार्ल मार्क्स ने की है। मार्क्स समाज के आमूल परिवर्तन की बात करते हैं। इसके लिए उन्होंने मानव विकास के एक व्यापक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार समाज के भौतिक ढाँचे में नैसर्गिक अंतर्विरोध मौजूद होते हैं। उनका कहना है कि समाज की वास्तविक बुनियाद उसका आर्थिक ढाँचा है, जिस पर वह टिका होता है।

मार्क्स के अनुसार

“सामाजिक उत्पादन में आदमी निश्चित संबंध बनाता है, जो उसके लिए अपरिहार्य है और मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र हैं, उनके उत्पादन के संबंध उनकी उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की निश्चित अवस्था के अनुरूप होते हैं।”

इन उत्पादन संबंधों का योग ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनाता है। यही वह असली बुनियाद है जिस पर 'वैधानिक और राजनीतिक ऊपरी ढाँचे विकसित होते हैं' और सामाजिक चेतना के निश्चित स्वरूप जिसके अनुरूप होते हैं। भौतिक जीवन में उत्पादन रीति ही जीवन को सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के सामान्य स्वरूप को निर्धारित करती है... तब सामाजिक क्रांति के युग का सूत्रपात होता है। आर्थिक बुनियाद में बदलाव आते ही समूचा विशाल ऊपरी ढाँचा कमोवेश तेजी से बदल जाता है। (मार्क्स 1992)। मार्क्स के अनुसार मानव समाज की विकास यात्रा में एशियाई, प्राचीन, सामंती और पूंजीवादी ये प्रमुख उत्पादन रीतियाँ या युग आए हैं। एशियाई उत्पादन रीति पाश्च्य समाज में देखने को नहीं मिलती है। आदिम समुदायों की विशेषता है कि उनमें स्वामित्व सामुदायिक होता है, और राज्य उन्हें अपने अधीन रखता है। प्राचीन उत्पादन रीति में दासप्रथा और सामंती उत्पादन रीति में दासत्व कृषिदासप्रथा उत्पादन प्रणाली की बुनियाद बनते हैं। उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली में सामान का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, मुक्त श्रम बाजार का उदय होता है और प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास होता है। मार्क्स भविष्यवाणी करते हैं कि समाजवाद हिंसक क्रांति के जरिए पूंजीवाद की जगह ले लेगा।

मार्क्स तर्क देते हैं कि समाज की उदीयमान उत्पादन शक्तियाँ मौजूदा उत्पादन संबंधों से टकराती हैं। नई उत्पादक शक्तियों का उदय और उनमें निहित अंतर्विरोध मानव इतिहास का सार हैं। मार्क्स के अनुसार “अब तक के मौजूदा समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है”। द्विभाजी वर्ग आधारित समाजों को एक प्रचंड वर्ग संघर्ष के जरिए उखाड़ दिया जाएगा और उनकी जगह एक वर्गविहीन, राज्यविहीन समाज के युग का सूत्रपात होगा, जिसमें हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार योगदान करेगा और अपनी जरूरत के अनुसार पाएगा।

द) हरबर्ट स्पेंसर (1820-1903)

हरबर्ट स्पेंसर को प्रगति और ऐतिहासिक विकास के एकत्व और अपरिवर्तनीयता पर विश्वास था। उनके चिंतन का मुख्य विषय समाज का उत्तरोत्तर विकास सिद्धांत था। चार्ल्स डार्विन की कृति 'द ओरिजिन ऑफ स्पेशीज' (1859) से वे बेहद प्रभावित थे।

स्पेंसर का मानना था कि युगों से एक सरल एकरूप या समजातीय ढाँचे से जटिल बहुविध या बहुजातीय ढाँचे में सामाजिक विकास होता रहा है। इस प्रकार उन्होंने सजीव प्राणियों और मानव समाज को सादृश्य मानकर विकास की प्रक्रियाओं के माध्यम से उनकी प्रगति को व्याख्या की। उनके अनुसार विकास की प्रक्रिया में अपनी रचना के आधार पर समाज सरल से विभिन्न सार के संयुक्त समाजों की दिशा में बढ़ते हैं। कुछ सरल समाज का समूह संयुक्त समाज की रचना करता है; इसी प्रकार कुछ संयुक्त समाजों का समूह दोगुना संयुक्त समाज बनाता है। दोगुना संयुक्त समाजों के समूह से तिगुना संयुक्त समाज बनता है। स्पेंसर के अनुसार

सरल समाज कुलों में एकीकृत परिवारों से, तो दोगुना संयुक्त समाज, कबीलों में गठित कुलों से बने होते हैं। तिगुना संयुक्त समाज में कबीले मिलकर राष्ट्र या राज्य का निर्माण करते हैं। (टिमाशेफ 1967 : 40)। विश्लेषण के एक मॉडल के रूप में सैन्य से औद्योगिक समाजों के विकास पर भी स्पेंसर ने प्रकाश डाला है। यथा अनिवार्य सहयोग, सत्ता और सामाजिक नियंत्रण का एक केन्द्रित पैटर्न, समाज क्रम-परंपरावादी अवधारणों को बल प्रदान करने वाले मिथक और विकास, कठोर अनुशासन और सार्वजनिक और निजी जीवनक्षेत्रों में भारी समानता ये सब सैन्य समाज की विशेषताएं थीं। दूसरी ओर औद्योगिक समाज में स्वैच्छिक सहयोग, वैयक्तिक अधिकारों का सम्मान, सरकार के राजनीतिक नियंत्रण से आर्थिक क्षेत्र संस्थाओं का विकास ये सब विशेषताएं मिलती हैं। (वही: 42)।

यहां एक बात पर गौर करना बेहद जरूरी है कि स्पेंसर के विकास मॉडल से यूरोप और अमेरिका में मुक्त बाजार के अबंध सिद्धांत (laissezfaire doctrine) के उदय और उसके विस्तार को समझा जा सकता है।

स्पेंसर का मानना था कि समाज की प्रगति के पीछे सबसे बड़ा हाथ जनसंख्या दबाव का होता है। सामाजिक विकास और प्रगति के अपने सिद्धांत में उन्होंने नाना प्रकार के कारकों को शामिल कर उसे व्यापक स्वरूप दिया। मानव समाज को उन्होंने जैविक प्राणी माना और इसीलिए 'विकास' का अध्ययन उन्होंने भीतर से होने वाले परिवर्तन के अर्थ में किया। उन्होंने समाज और जीव और सामाजिक और आर्थिक विकास के बीच सादृश्यता स्थापित की। उनका कहना था कि "आकार में वृद्धि होने पर समाज की संरचनात्मक जटिलता भी बढ़ जाती है"।

अभ्यास 1.1

मोर्गन द्वारा प्रतिपादित मानव समाज की प्रगति के मूलभूत सिद्धांत क्या हैं? कॉम्टे से ये किस प्रकार भिन्न हैं?

1.4 विकास और प्रगति पर टोनीज, दुर्खाइम, वेबर, हॉबहाउस और पारसंस

प्रगति और विकास की अवधारणा का अनेक विद्वानों ने अन्वेषण किया जिससे पुराने और नए के बीच अंतराल स्पष्ट होता है। इस भाग में मुख्यतः टोनीज, वेबर, दुर्खाइम, हॉबहाउस और पारसंस के विचारों पर चर्चा करेंगे।

क) टोनीज (1855-1936)

टोनीज का मत था कि जेमीनस्काफ्ट (Gemeinschaft) में मनुष्य को उसकी प्राकृतिक दशा यानी कि रक्त संबंध, विवाह, पति और पत्नी, मां और बच्चे और भाई-बहनों में मजबूत संबंध के द्वारा एक-दूसरे से बंधा रहता है। इनके जेमीनस्काफ्ट में नातेदारी समूह, आस-पड़ोस और मित्रता प्रमुख समूह हैं, जो एक साझी इच्छा के द्वारा संचालित होते हैं। यह साझी इच्छा, साझे विश्वास, मूल्य और आचरण के तौर-तरीकों में विकसित होती है। वहीं 'गैसेलस्काफ्ट' में साझी इच्छा नहीं होती, बल्कि उसमें व्यक्ति निजी-स्वार्थ से संचालित होता है। यहां प्रत्येक संबंध को उसका कीमत या हैसियत से आंका जाता है, जिसका निर्धारण उसके उत्पादन में लगे श्रम से किया जाता है। इस तरह जेसेलस्काफ्ट में संबंध एक उत्पादन संबंध होता है।

इन सिद्धांतों के जरिए सामाजिक विकास को रेखीय क्रम में समझने का प्रयास किया गया। टोनीज की दृष्टि में विकास का अर्थ जेमीनस्काफ्ट या मानव समुदाय की क्षति है। उनका मानना था कि औद्योगिक क्रांति परिवार के विचार को छिन्न भिन्न किए दे रही है उसकी जगह तथ्यों और प्रगुणता को महत्व दे रही है। विशेषकर उत्तरी अमेरिकी और यूरोप के समाजों का ध्यान निजी-स्वार्थ पर केन्द्रित हो चला था, जिसे टोनीज ने जेसेलस्काफ्ट कहा।

ख) दुर्खाइम (1858-1917)

समाज को दुर्खाइम जैसे दार्शनिक ने भी एक विकासवादी योजना की दृष्टि से देखा। वे सामाजिक समेकता (Social solidarity) की बात करते थे। इससे उनका तात्पर्य नैतिक विश्वास और विचार थे, जो सामाजिक जीवन में अंतर्निहित "सामान्यबुद्धि" को परिभाषित करते हैं। एक सामाजिक विकासवादी की तरह दुर्खाइम भी मानते थे कि यांत्रिक सुदृढ़ता (Mechanical solidarity), जो कि प्रोगौद्योगिक समाजों की विशेषता थी, वह लोगों में सहमति और अनन्यता पर आधारित थी। वहीं औद्योगिक समाजों में जैव सुदृढ़ता (Organic solidarity) कई प्रकार के मतभेदों को सहने की सहमती से आई। इनमें द्वंद्वों या टकरावों का समाधान नाना प्रकार के सांस्थानिक व्यवस्थाओं जैसे न्यायालय, श्रमिक संगठन और राजनीतिक दल के माध्यम से किया जाता है।

प्रोगौद्योगिक समाजों में श्रम का विभाजन नहीं होता। इनमें हर व्यक्ति समान तरीके से काम करता और उपभोग करता है, न तो कोई मतविभाजन होता है और न ही कोई वैयक्तिकता (individuality) दूसरी ओर जैव सुदृढ़ता में क्रियाकलापों में विशेषता और श्रम विभाजन उन्नत होता है। इसमें उत्पादन, विवरण और उपभोग विशेष तरीके से होता है (दुर्खाइम 1965: 133)।

सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या दुर्खाइम ने नैतिकता के बंधनों में परिवर्तनों के परिणाम के रूप में की, जिसे उन्होंने सामाजिक सुदृढ़ता पर आधारित समाज औद्योगिकीकरण, बहुरूपता, विभेदन, क्रियाकलापों में विशेषता और वैयक्तिकता में वृद्धि के द्वारा जैव सुदृढ़ता में बदल जाते हैं। उनके अनुसार जनसंख्या वृद्धि की समस्या, प्राकृतिक संसाधनों में हास और बढ़ती वैयक्तिकता (यानी भौतिक और नैतिक घनत्व में वृद्धि) की समस्या का समाधान औद्योगिक समाज में, यानी जैव सुदृढ़ता में, श्रम विभाजन के द्वारा किया जाता है। अब चूंकि प्रत्येक व्यक्ति विशेष होता है और फिर वैयक्तिकता का आदर भी किया जाता है, इसलिए हर व्यक्ति श्रम विभाजन के बंधन में सामाजिक रूप से जुड़ जाता है। जैव सुदृढ़ता में श्रम विभाजन असल में वैयक्तिक विशेषता को तंत्र में मिलाने का काम करता है। पर असामान्य श्रम-विभाजन प्रतिमानहीनता की स्थिति पैदा कर सकता है, जिसे दुर्खाइम 'एनोमी' (Anomie) कहते हैं।

बॉक्स 1.1: भौतिक और नैतिक घनत्व दुर्खाइम के मत में भौतिक घनत्व का तात्पर्य एक निश्चित स्थान में जनसंख्या में वृद्धि से था। नैतिक घनत्व जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप व्यक्तियों के बीच बढ़ता अन्योन्यक्रिया को दर्शाता है।

समाज में श्रम विभाजन के विकास को दुर्खाइम ने लोगों में बढ़ते सम्पर्क (नैतिक घनत्व) के साथ जोड़कर देखा, क्योंकि संपर्क का घनत्व तभी कोई प्रभाव पैदा कर सकता है जब व्यक्तियों के बीच की वास्तविक दूरी खत्म हो जाए, जिसका सीधा सा अर्थ भौतिक घनत्व में वृद्धि है। यहाँ दुर्खाइम का तात्पर्य यह है कि नैतिक घनत्व में तब तक वृद्धि नहीं हो सकती है जब-तक उसके साथ-साथ भौतिक घनत्व में वृद्धि न हो। यह प्रक्रिया तीन तरह से होती है।

- 1) लोगों का जमावड़ा: लोग एक जगह पर इकट्ठा हो जाते हैं। इस तरह कृषि की शुरुआत होती है और यह प्रक्रिया शहरों के बन जाने पर भी जारी रहती है।
- 2) शहर: व्यक्तियों को जब एक-दूसरे से बहुत घनिष्ठ सम्पर्क रखने की जरूरत पड़ती है, तो इससे शहरों की उत्पत्ति होती है। शहरों की संख्या में तभी वृद्धि और विस्तार हो सकता है जब नैतिक घनत्व भी बढ़े।
- 3) यातायात और संचार: यातायात और संचार के साधनों में और उनकी गति में वृद्धि से वह खाई पटने लगती है जो समाज के हिस्सों को एक-दूसरे से अलग रखती है। इसके फलस्वरूप समाज का घनत्व बढ़ता है।

स्रोत: दुर्खाइम 1933 और 1984।

ग) मैक्स वेबर (1864-1920)

मानव समाज के विकास के प्रश्नों का विश्लेषण मैक्स वेबर ने पूंजीवाद के अपने अध्ययन के परिप्रेक्ष्य से किया था। उनका कहना था कि प्रगति के प्रतीक के रूप में पूंजीवाद का उदय कार्य-नैतिकता, बचत, मितव्ययी जीवनशैली के विश्वासों, मूल्यों और दृष्टिकोणों को तर्कसंगत बनाने से हुआ है। वेबर के अनुसार पूंजीवादी औद्योगिकरण पश्चिमी यूरोप के कुछ चुनिंदा देशों में हुआ और अन्य में नहीं, क्योंकि इन देशों के केल्विनवादी प्रोटेस्टेंट मतावलंबियों ने अपने विचारों, धार्मिक विश्वासों और मूल्यों को तर्कसंगत बनाकर सांसारिक वैराग्य वाली जीवनशैली विकसित की ताकि वे उपभोग कम कर सकें और उद्योग-धंधों में निवेश को बढ़ावा दे सकें। इस तरह वे ईश्वर की इच्छा के अनुरूप दुनिया को वैभवशाली बनाना चाहते थे। भारत के बारे में वेबर का कहना था कि हिन्दुस्तान में पारंपरिक मूल्यों जैसे धर्म, कर्म, मोक्ष, संसार और जातिगत मूल्यों का बोलबाला है, जिनके कारण यहां विवेकी पूंजीवाद (Rational Capitalism) नहीं पनप सका। संक्षेप में, वेबर ने पारंपरिक प्रौद्योगिक से पूंजीवाद समाज में मानव समाज के विकास का अध्ययन किया। उनके अनुसार यह विकास धार्मिक विश्वासों को तार्किक बनाने की प्रक्रिया से हुआ।

डेविड मैकक्लीलैंड ने मैक्स वेबर की तरह उन आंतरिक कारकों पर बल दिया था, जैसे अपनी नियति को संवारने के लिए व्यक्तियों को मौके प्रदान कराने वाले मूल्य और प्रेरणा। पिछड़ेपन, गरीबी, कुपोषण इत्यादि पारंपरिक और गैर-पारंपरिक सोच से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। उनका मानना था कि इन समस्याओं के निवारण के लिए पिछड़े क्षेत्रों के लोगों में "उपलब्धि हासिल करने की आवश्यकता" को बढ़ावा देने के उद्देश्य से शैक्षिक कार्यक्रमों और तकनीकी सहायता की जरूरत पड़ती है। मैकक्लीलैंड का निष्कर्ष था कि आधुनिकीकरण और विकास संस्कृति, विचारों और प्रौद्योगिकी के प्रसार से हासिल किया जा सकता है।

घ) एल.टी. हॉबहाउस (1864-1929)

काम्टे के दर्शन के आगे बढ़ते हुए उन्होंने कहा कि 'मानव मस्तिष्क का विकास सामाजिक विकास में निर्णायक कारक' था स्पेंसर से सामाजिक विकास के विचार को लेकर उसकी व्याख्या पैमाने, जटिलता और आंतरिक विभेदन में वृद्धि की प्रक्रिया के रूप में की। हॉबहाउस के अनुसार मस्तिष्क का विकास सामाजिक विकास को लेकर आता है, "और चूंकि इस मानसिक विकास में तर्कसंगत नैतिकता के आदर्श की दिशा में नैतिक विचारों का विकास शामिल है, जिससे प्रमुख सामाजिक संस्थाओं का कायापलट होता है। इसलिए इसे प्रगतिशील कहा जा सकता है। (बॉटोमोर 1962 : 293)।

ङ) पारसंस

विभिन्न चरणों से होते हुए मानव समाज के विकास की व्याख्या के लिए पारसंस ने विकासवादी परिप्रेक्ष्य को लिया। उन्होंने विकासवादी सार्विकों (Evolutionary Universals) की अवधारणा प्रस्तुत की। इससे उनका यह तात्पर्य था कि ऐतिहासिक विशिष्टताओं के बावजूद प्रत्येक सामाजिक प्रणाली का विकास कुछ सामान्य दिशाओं में हुआ है। उन्होंने पूरे विश्व में आदिम समाज से लेकर आधुनिक औद्योगिक समाज तक सामाजिक प्रणाली के विकास की प्रमुख अवस्थाओं के ऐतिहासिक और तुलनात्मक विश्लेषण पर भी जोर दिया। पारसंस ने निम्न प्रकार के विकासीय समाजों का विश्लेषण किया: आदिम/पुरागत, मध्यवर्ती और आधुनिक।

आदिम समाजों का सामाजिक गठन प्रारंभिक होता है और उनकी आर्थिक गतिविधियां भी प्रारंभिक होती हैं, जैसे कि भोजन संग्रहण, आखेट, पशुपालन और खेती-बाड़ी ताकि जीवित रहने के लिए जरूरी चीजें मनुष्य को मिल जाएं। ये समाज प्रारंभिक प्रौद्योगिक का प्रयोग करते हैं। इनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियां जीववाद (Animism), जादू-टोने और धर्म से जुड़ी होती हैं। इनमें राजनैतिक तंत्र बेहद सरल होता है, जिसे समुदाय की सामूहिक भूमिका चलाती है।

मध्यवर्ती समाजों का विकास आदिम समाजों में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप मानव बस्तियों, कस्बों और नगरों में दोहरे विभाजन के फलस्वरूप होता है और इससे समाज में पेशागत विभेदन और नए वर्गों का उदय भी होता है। इस तरह स्तरीकरण की विस्तृत प्रणाली जन्म लेती है, जिसका आधार व्यक्ति के सत्ता पर नियंत्रण, धन-संपदा या हैसियत होता है या जो जाति-व्यवस्था के स्वरूप में उभरती है। तब सामाजिक नियंत्रण के लिए सामान्यीकृत नियम और संहिताबद्ध प्रतिमान विकसित होते हैं जो सामंतवाद या राजवाही के रूप में मौजूद व्यवस्थाबद्ध राजनीतिक ढांचे को पुष्ट बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। पारंपरिक चीन, भारत, इस्लामी और रोमन साम्राज्य ठेठ मध्यवर्ती समाज हैं।

पारसंस के अनुसार, आधुनिक समाज मानवता को पाश्चात्य जगत का अनूठा योगदान है, जिनका विकास औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप हुआ। औद्योगिक क्रांति ने प्रौद्योगिकी और विज्ञान की सहायता से उत्पादन प्रक्रियाओं को आमूल बदल डाला। फ्रांसीसी क्रांति ने समता, बंधुत्व और न्याय जैसे विचारों को जन्म दिया, जिससे लोकतांत्रिक शासन और संधि सामाजिक हैसियत (achieved social status) मार्ग प्रशस्त हुआ। शिक्षा ने उदार विचारों के धर्मनिरपेक्षकरण और सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया शुरू की। पारसंस के अनुसार आधुनिक समाज की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं: सर्वरक्षावादी कानून (Universalistic law) मुद्रा और बैंकिंग के आधुनिक संस्थानों का विकास, तार्किक नौकरशाही और लोकतांत्रिक समाज का विकास (पारसंस पर अधिक जानकारी के लिए MSO-001 पढ़िए)।

अभ्यास 1.2

मार्क्स और पारसंस ने मानव समाज के विकास के जो विकासवादी मॉडल दिए हैं उनमें तुलना और अंतर करिए।

1.5 वृद्धि, परिवर्तन और आधुनिकीकरण के रूप में विकास

विकास को लेकर हालांकि अनेक बोधात्मक असहमतियाँ हैं, इसे उत्पादकता, आधुनिकीकरण, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की रफ्तार में वृद्धि के रूप में भी लिया जाता है। इस अवधारणा में विकास को निर्मित-वस्तुओं और सेवाओं में भारी उछाल, सांस्थानिक व्यवस्थाओं के मद्देनजर समाज का प्रागाधुनिक से आधुनिक समाज में कार्यांतरण, अर्थ-व्यवस्था का कृषि से औद्योगिक व्यवस्था में रूपांतरण, जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन, आर्थिक क्रियाकलापों का कृषि से गैर-कृषि क्रियाकलापों की दिशा में परिवर्तन इत्यादि के रूप में देखा जाता है।

इस भाग में हम द्वितीय विश्वयुद्ध के उत्तरार्ध में विकास के आम तौर पर जिन-जिन अर्थों में लिया गया है, उस पर चर्चा करेंगे। विकास की इन अवधारणाओं का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है, हम संक्षेप में इसकी भी चर्चा करेंगे।

विकास के अनेक अर्थ: विकास को अनेक अर्थों में लिया गया है, जैसे वृद्धि के रूप में विकास परिवर्तन के रूप में विकास और आधुनिकीकरण के रूप में विकास।

क) वृद्धि: आर्थिक दृष्टि से वृद्धि के रूप में विकास का तात्पर्य उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता में वृद्धि और उसके साथ-साथ उपभोग के प्रतिरूप में भी वृद्धि से है (लिटिल, मार्गलिन एवं मार्गलिन (1990:1) वृद्धि के रूप में विकास को मनुष्य की रोटी, कपड़ा, मकान चिकित्सा और शिक्षा संबंधी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से वृद्धि की दृष्टि से परिभाषित किया जा सकता है। (स्ट्रीटन एवं सहयोगी, मार्गलिन एवं मार्गलिन 1990:2)। वृद्धि का तीसरा अर्थ विकास की संभावनाओं के विस्तार, व्यक्तिगत विकल्पों में क्षमताओं और कार्यशीलता में वृद्धि के बतौर देखा जाता है। (सेन,

मार्गलिन एवं मार्गलिन 1990:2)। उपरोक्त अर्थों में विकास का अर्थ साकारात्मक, प्रगतिवादी, स्वाभाविक रूप से लाभकर और अवश्वकारी होना है।

- ख) परिवर्तन और कार्यांतरण: परिवर्तन और कार्यांतरण के रूप में विकास का तात्पर्य मानव समाजों में परिवर्तन की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से है। (स्कीजवर्स 1993)।
- ग) आधुनिकीकरण: विकास को आधुनिकीकरण के रूप में भी लिया जाता है, हालांकि कुछ विद्वान दोनों को एक नहीं मानते। आधुनिकीकरण को अक्सर विकास के जरिए के रूप में भी देखा जाता है। आर्थिक कार्यक्षेत्र में इसे औद्योगीकरण, शहरीकरण और कृषि में प्रौद्योगिकीय रूपांतरण की प्रक्रियाओं के रूप में लिया जाता है। राजनीतिक कार्यक्षेत्र में आधुनिकीकरण के लिए सत्ता और विशेषकर नौकरशाही को तार्किक बनाना जरूरी है। सामाजिक कार्यक्षेत्र में आधुनिकीकरण का अर्थ प्रदत्त संबंधों का कमजोर पड़ना और प्रगति के मामले में व्यक्तिगत उपलब्धि को महत्ता मिलना है। सांस्कृतिक क्षेत्र में यह विज्ञान में वृद्धि और धर्मनिरपेक्षीकरण है, जिसके साथ-साथ शिक्षित जनसंख्या में विस्तार है, जो संसार के 'मोहभंग' की दिशा में ले जाता है (मार्गलिन 1990)। आधुनिकता के इस अर्थ में विकास को पश्चात्यीकरण कहा गया है, जिसमें पश्चात्य जगत को शेष विश्व के लिए प्रगति का मॉडल माना जाता है। इस अर्थ में विकास एक तुलनात्मक विशेषण बन जाता है। यह पश्चात्य केन्द्रित इस धारणा पर आधारित है कि विश्व विकास की रेखीय प्रक्रिया से गुजरा है, जिसमें विश्व इतिहास और विकास की अगुवाई पश्चिम ने की है। एक सजातीय विश्व (homogeneous world) का लक्ष्य हासिल करने के लिए अन्य देशों को उसके पीछे चलना होगा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब अमेरिका का राष्ट्रपति हैरी एस. ट्रूमैन ने विकास के युग का सूत्रपात किया जब से इस शब्द ने एक विशेष अर्थ हासिल कर लिया है। ट्रूमैन ने सार्वजनिक रूप से कहा था कि उनके देश ने विज्ञान और उद्योग के क्षेत्र में जो तरक्की हासिल की है। उसके लाभों को "अल्पविकसित" क्षेत्रों की उन्नति और वृद्धि के लिए सुलभ बनाने की दृष्टि से एक नया साहसिक कार्यक्रम चलाने की जरूरत है। पुराने उपनिवेशवाद और विदेशी लाभ के लिए शोषण को नकारते हुए उन्होंने विकास के एक ऐसे कार्यक्रम की घोषणा की जो लोकतांत्रिक उचित व्यवहार पर आधारित था (ऐस्टीवा 1992)। इस घोषणा के बाद से विकास का अभिप्राय 'अल्पविकास' की दयनीय दशा से उबरना लिया जाने लगा।

विकास और उसका प्रभाव: चूंकि विकास को प्रायः उत्पादकता में वृद्धि, आर्थिक समृद्धि और बाजारोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था में परिभाषित किया जाता था, इसलिए अल्पविकास का अर्थ था गरीबी, निम्न उत्पादकता और पिछड़ापन। यह आशा थी कि आर्थिक वृद्धि की वह रास्ता है जिस पर विकास तेजी से दौड़ता है। इसलिए 1950 के दशक बाद से औद्योगीकरण और सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की वृद्धि पर दुराग्रह की हद तक ध्यान केन्द्रित रहा है। यह मान लिया गया है कि इन देशों में तेज वृद्धि का एक स्वाभाविक परिणाम यह रहेगा कि मौजूदा सामाजिक दशा में सकारात्मक बदलाव आएगा। मगर इस दुराग्रह के अनेक दुष्परिणाम निकले।

- क) विकास का अर्थ चूंकि औद्योगिक विकास था, इसलिए लाभ और संसाधनों को उद्योगों को बढ़ाना देने में खर्च किया गया पर ऐसा करते समय समाज का जीवनयापन संबंधी जरूरतों को अनदेखा किया गया। जाहिर है इसके फलस्वरूप अनेकोनेक लोगों की आजीविका की कीमत पर बाजार का विस्तार हुआ। इससे जहां एक ओर भोग-विलास की वस्तुओं और सेवाओं का जन्म हुआ दूसरी ओर इसके परिणामस्वरूप भारी प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का इस कदर सरण हुआ है कि मानवजाति के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है।

ख) वृद्धि-उन्मुखी विकास के साथ असामनताओं और सामाजिक विघटन भी बढ़ा। हर जगह इस बात के प्रमाण दिखाई दिए कि विकास ने एक क्षेत्र को या तो अछूता छोड़ दिया है या फिर गरीबी और प्रगतितरोध के नए क्षेत्र पैदा कर दिए हैं, फलस्वरूप आबादी के हिस्से हाशिए में चले गए और वे सामाजिक और आर्थिक प्रगति के फलों से वंचित रह गए। विकास की प्रचलित प्रक्रियाओं से उपजे इन अन्यायपूर्ण परिणामों को गुंडर फ्रांक ने जाना। उन्होंने 'अल्पविकास का विकास' का नारा दिया क्योंकि विकास की जो प्रक्रिया चल रही है वह कुछ लोगों और अंचलों को विकसित बनाती है तो अन्य अल्पविकसित या पिछड़े रह जाते हैं। विश्व प्रणाली की वैश्विक गतिका का परिणाम यह है।

ग) आर्थिक वृद्धि कई तरह से प्रकट हुई हैं। जैसे: विकासशील देशों की अर्थ-व्यवस्था का अंतराष्ट्रीयकरण, राष्ट्रों के पास उपलब्ध वित्त पूँजी में भारी उछाल, उत्पादन और उपभोग की प्रक्रियाओं और पैटर्न को प्रभावित करने वाले यंत्रिकरण (Mechanisation)। इसका मतलब धन-संपदा का कुछ व्यक्तियों या देशों के हाथों संचय हो जाना, धन-संपदा के वितरण में भारी विषमताएँ, कल्याणकारी राज्य का हट जाना और देशों के राजनीतिक और आर्थिक जीवन में सेना की बढ़ती भूमिका भी है। आर्थिक विकास तथा आर्थिक व्यवस्थाओं को केन्द्रित करने से बृहत आधार पर कभी भी विकास का उद्गम संभव नहीं।

घ) यह आर्थिक मॉडल यांत्रिक (Mechanistic) है और इसमें आर्थिक तार्किकता की जो धारणा निहित है, वह तीसरी दुनिया के देशों के अनुकूल नहीं है। उदाहरण के लिए उदार बाजार-व्यवस्था का मतलब गरीब लोगों की बहुत बड़ी आबादी का अर्थ-व्यवस्था से अपवर्णन है, यानी वे इसके लाभों से पूरी तरह वंचित रह जाते हैं क्योंकि इसमें उनकी कोई भागीदारी नहीं होती। गरीबी हटाने का यह कोई तरीका नहीं, जबकि गरीबी हटाना ही तीसरी दुनिया के लिए सबसे बड़ा विकासात्मक मुद्दा है।

ङ) कुछके अंचलों बढ़ते आय-स्तर, दिन दोगुना रात चौगुना होता निर्यात और आर्थिक वृद्धि में इजाफे से जनसाधारण में बढ़ती गरीबी, लुप्त होते संसाधनों, बेरोजगारी, बेगारी, अपर्याप्त आवास और बढ़ते विदेशी कर्ज की भयावह समस्याओं को झुठलाया नहीं जा सकता, जो राष्ट्रीय संप्रभुता के लिए खतरा बनने के अलावा यह श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रियाओं को जन्म देती हैं, जो राष्ट्रीय संसाधनों और क्षमताओं का इस कदर सरण कर सकती हैं जिसकी भरपाई कभी नहीं हो सकती।

इस तरह का आर्थिक विकास अगर चिंता, अलगाव, विखंडन, मानवद्वेष और कार्य-विरति को जन्म देता है, तो वह मानवता की प्रगति के अपने उद्देश्य को खुद ही त्याग देता है। इसके बावजूद निरक्षरता, बेरोजगारी, उत्पादक परिसम्पतियों और ज्ञान की कमी के कारण लोग जिस तरह असहाय महसूस करते हैं उसे दूर करने के लिए हमें विकास की जरूरत है। मानवता का एक बहुत बड़ा समूह निम्न स्तरीय जीवन और गरीबी से जूझ रहा है। हम इस सच्चाई को बदलने की जरूरत से नजरें नहीं चुरा सकते। हमें संभावनाओं के विस्तार की दिशा में करना होगा ताकि लोग अपने को परिपूर्ण कर सकें। पर वहीं हमें ऐसे विकास से सावधान रहना होगा, जिसका मतलब "परिवर्तन के प्रति द्विआधारी, यंत्रवादी, अपचयवादी और अंततः स्व-विध्वंसक सोच" रहा है। (रहनीमा 1997)।

उपरोक्त चर्चा से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि विकास का अब तक का लेखा-जोखा ज्यादा आशावादी तो नहीं है, पर गरीबी और पिछड़ेपन की समस्याओं को दूर करने की संभावनाएँ भी इसी विकास में मौजूद हैं, जिनसे मनुष्य लंबे समय से जूझ रहा है। आइए अब आर्थिक विकास के विभिन्न मॉडलों के बारे में जानें।

1.6 विकास के पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी-दुनिया के मॉडल

आर्थिक विकास आधुनिक राज्य का प्रमुख सरोकार रहा है। पर यह सरोकार राज्य की विचारधारा और सत्ता के ढांचे (Power structure) से गहरा जुड़ा रहा है। सत्ता का ढांचा और राज्य की विचारधारा का स्वरूप चूंकि विविध प्रकार के आर्थिक विकास के मॉडल उभरे हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद के काल में 1970 के दशक तक विकास संबंधी वाद-संवाद अपनिवेश खत्म होने की प्रक्रिया राष्ट्र-राज्यों के आर्थिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता और शीतयुद्ध की छाया से तय हुआ। एक ओर पश्चिम और दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अमेरिका का औद्योगिक और राजनीतिक उदय हुआ, तो दूसरी ओर रूस और साम्यवादी राज्य विश्वपटल पर उभरे। लेकिन इन देशों के उदय के अलावा एक बड़ा धड़ा प्रगतिरूढ़ राष्ट्रों का भी रहा, निम्न उत्पादकता, औद्योगिक पिछड़ापन और गरीबी जिनकी पहचान बनी। इस प्रकार पहली दूसरी और तीसरी दुनिया के क्रमशः पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी दुनिया के विकास मॉडलों का जन्म हुआ।

पूंजीवादी मॉडल में संपत्ति और उत्पादन के साधनों का स्वामित्व निजी हाथों में होता है, आर्थिक उद्यमों पर राज्य का नियंत्रण न्यूनतम होता है और अर्थ व्यवस्था मुक्त होती है, जिसे स्पर्धा नियमित करती है। विकास का यह मॉडल सतत वृद्धि और आधुनिकीकरण पर विशेष जोर देता है। जिसके शुरुआती चरण में राज्य को भारी निवेश करना होता है। इस परिप्रेक्ष्य में “आर्थिक विकास औद्योगिकीकरण और अपूर्ण-रोजगारी ग्रामीण श्रम का शहरी औद्योगिक क्षेत्र में ज्यादा उत्पादन काम-धंधों में स्थानांतरण के इर्दगिर्द घूमता है। राज्य को घरेलू और विदेशी बचत से एक निवेश ‘पूल’ (Investment pool) बनाना पड़ता है, जिससे यह निदेशित औद्योगिक विकास के कार्यक्रम के वित्त प्रदान कर सकता है”। (कोरंब्रिज 1995:2)।

लेकिन पहली दुनिया के इस विकास मॉडल को उस समाजवादी मॉडल के विस्तार से उत्पन्न अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसका प्रतिनिधित्व दूसरी दुनिया कर रही थी। समाजवादी मॉडल विकास के पूंजीवादी मॉडल का उल्टा था, क्योंकि यह संपत्ति और उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व को खत्म करता था, बल्कि यह उत्पादन के साधनों पर राज्य स्वामित्व, राज्य के स्वामित्व में सार्वजनिक उपक्रमों, राज्य द्वारा नियमित अर्थ-व्यवस्था और आर्थिक विकास के लिए राज्य द्वारा केन्द्रीयकृत नियोजन की बात करता था। पूंजीवादी और समाजवादी ये दोनों मॉडल मुख्य रूप से आर्थिक वृद्धि पर ही जोर देते थे। पर समाजवादी मॉडल की एक विशेषता थी। इसमें आबादी के सभी वर्गों में इस आर्थिक वृद्धि के फलों के समान वितरण पर विशेष ध्यान दिया गया।

तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिकी के पूर्व-उपनिवेश नव-स्वतंत्र और गुटनिरपेक्ष देश आते हैं, जो औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हैं। असल में तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य पहली और दूसरी दुनिया की परस्पर-विरोधी विचारधाराओं में जकड़े हुए हैं। अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक ताने-बाने, ऐतिहासिक अनुभवों और प्रौद्योगिक और आर्थिक विकास के स्तर के लिहाज से इन देशों में भारी विविधता है। आर्थिक और प्रौद्योगिक दृष्टि से यह देश अल्प-विकसित हैं। अपने औपनिवेशिकोत्तर काल में ये देश राष्ट्र-निर्माण और तेज सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। ये देश विकास के विविध मॉडलों पर प्रयोग कर रहे हैं। उदाहरण के लिए भारत ने अपने विकास के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया है। यह पूंजीवादी और समाजवादी मॉडलों के बीच का रास्ता है।

1950 के दशक में एक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि वृद्धि सिद्धांत प्रतिपादक सामाजिक, सांस्कृतिक

और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में किया जाने लगा। यह विकास के आधुनिकीकरण परिप्रेक्ष्य के उदय के साथ हुआ आधुनिकीकरण का सिद्धांत पूंजीवादी और समाजवादी सामाजिक और सामाजिक व्यवस्थाओं से जुड़ा था। तीसरी दुनिया के समाजों ने भी आधुनिकीकरण का रास्ता अपनाया, जिसमें कुछ को सफलता मिली तो कुछ को नहीं।

ऐतिहासिक अनुभव और विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने पूरी दुनिया में सिर्फ आधुनिकता के विविध प्रतिरूपों को ही जन्म नहीं दिया है, बल्कि इसने राष्ट्रों के बीच असंतुलित आर्थिक और राजनीतिक संबंध को भी जन्म दिया है।

परामिता सिद्धांतकारों का तर्क है कि असमान व्यापार संबंधों और पूंजीवादी विकास ने दक्षिणी गोलार्ध के देशों को पूंजी, प्रौद्योगिकी और बाजार के लिए उत्तरी गोलार्ध के देशों पर निर्भर कर दिया है जैसे, पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका। फ्रांक का मत है कि पूंजीवादी देशों के आर्थिक प्रभाव की जड़ में आने से विकासशील देश उन पर आश्रित हो गए हैं। (इस पाठ्यक्रम के आगे के ब्लॉकों में आप आधुनिकीकरण और परमिता सिद्धांतों के बारे में विस्तार से जानेंगे)।

अभ्यास 1.3

विकास के विभिन्न मॉडलों का समाजशास्त्रीय मीमांसा लिखें।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि 1980 के दशक से विकास के प्रमुख सिद्धांतों को लेकर गंभीर शंकाएं उठ रही हैं। "साम्यवाद के धराशायी हो जाने से विकास की वामपंथी रणनीतियों की विश्वसनीयता पूर्णतः नहीं तो आंशिक रूप से ही सही संदेह के घेरे में आ गई हैं। पर वहीं जिन सिद्धांतों ने पश्चिमी पूंजीवादी मॉडल पर आधारित विकास का रास्ता अपनाने की पैरवी की थी वे भी सभी लाभ नहीं दे पाए हैं जिनका वादा उन्होंने किया था।" तीसरी दुनिया के देश विकसित देशों के संचित ऋण के तले दबे हुए हैं। पश्चिम ने विशेषकर विश्व बैंक (WB) और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) के माध्यम से इन देशों पर "ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम (Structure Adjustment Programmes) थोपे हैं। इससे वे मुक्त बाजार के प्रवीण चालन में आने वाले अवरोधों को दूर कर आर्थिक वृद्धि के लिए स्थितियां पैदा करना चाहते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम ने समूची तीसरी दुनिया में आर्थिक वृद्धि को गति नहीं दी है। (टी.पारफिट 2002:2)। इस प्रकार पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, आइए अब विकास के सामाजिक और मानवीय आयामों के बारे जानें।

अभ्यास 1.4

द्वितीय विश्व-युद्ध के उत्तरार्ध में विकास को किन-किन अर्थों में लिया गया?

1.7 विकास के सामाजिक एवं मानवीय आयाम

जैसा कि हमने पीछे बताया है, पारंपरिक (क्लासिकी) परिभाषा में विकास की चर्चा हमेशा आर्थिक अर्थों के साथ की जाती है और इसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) या प्रति-व्यक्ति आय के रूप में लिया जाता है। इस परिभाषा में विकास को वृद्धि के तुल्य माना जाता है और कहा जाता है कि वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं में प्रमात्रा वृद्धि (Quantum increase) से विकास होता है। इसमें यह भी मान लिया गया कि वृद्धि-विकास के थोड़ा-थोड़ा करके नीचे पहुँचने वाले प्रभाव (Trickle down effect) से समाज में लाभों, संसाधनों और अवसरों का समान रूप से बंटवारा होगा। विकास की इस प्रक्रिया ने मानवता के हित में वांछित परिणाम नहीं दिए हैं, खासकर विकासशील देशों में।

तीसरी दुनिया के देशों में विकास का जो पैटर्न पिछले कुछेक दशकों से चला रहा है। उसमें निम्न रुझान देखने को मिल रहे हैं।

- तेजी से वृद्धि कर रहे विकासशील देशों ने सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में जो उच्च वृद्धि-दर्ज की है, उससे इन देशों की आबादी के बड़े हिस्सों की सामाजिक-आर्थिक वंचना में कोई कमी नहीं आ सकी है।
- औद्योगिक देशों की उच्च आय वहां नशाखोरी, शराबखोरी, एड्स, बेघरपन, हिंसा और पारिवारिक संबंधों में टूटन जैसी तेजी से फैल रही सामाजिक चिंताओं से सुरक्षा प्रदान नहीं कर पाई है।
- पर वहीं कुछ कम आय वाले देशों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि अगर उपलब्ध साधनों-संसाधनों को प्रवीणता से बुनियादी मानवीय क्षमताओं को उन्नत करने में लगाया जाए तो मानव विकास का उच्च स्तर हासिल करना संभव है। (यूएनडीपी 1990:10)।

इससे मद्देनजर विकास को देखने के नजरिए में बदलाव आया है। यह बात मानी जाने लगी है कि मानव कल्याण के लिए आर्थिक वृद्धि जरूरी तो है, लेकिन इसे मानव के लिए विकल्पों को सुधारने उन्हें व्यापक बनाने के माध्यम के रूप ही देखा जाना चाहिए। वर्ष 1990 में प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट स्पष्ट शब्दों में कहती है:

“हम इस अटल सत्य को फिर से जानने लगे हैं कि लोगों को सभी विकास के केन्द्र में होना चाहिए। विकास का प्रयोजन लोगों को अधिक विकल्प देना है। उनका एक विकल्प आय तक पहुंच है— यह साध्य नहीं, बल्कि मानव कल्याण प्राप्ति का साधन है। पर अन्य विकल्प भी है जैसे दीर्घायु, ज्ञान, राजनीतिक स्वतंत्रता, निजी सुरक्षा, सामुदायिक भागीदारी और मानवाधिकारों की गारंटी। लोगों को महज, आर्थिक प्राणी बनाकर उन्हें एक ही आयाम में नहीं समेटा जा सकता। उन्हें और विकास की प्रक्रिया को वह समूचा स्पेक्ट्रम आकर्षक बना देता है, जिसके जरिए मानव क्षमताओं को विस्तार दिया जाता है, और काम में लाया जाता है। अब यह महसूस किया जाने लगा है कि किसी राष्ट्र की असली संपदा उसके लोग हैं। विकास का मूल उद्देश्य लोगों के लिए योग्य बनाने वाला वातावरण (Enabling environment) पैदा करना है, ताकि वे लंबा, स्वस्थ और रचनात्मक जीवन जी सकें। राष्ट्रीय आय और उसकी वृद्धि को नापने के लिए की जाने वाली आँकड़ों की बाजीगरी हमारा ध्यान इस सच्चाई से दूर हटा देती है कि विकास का पहला उद्देश्य लोगों को लाभ पहुंचाना है।” (यूएनडीपी 1990)। इस बात को ध्यान में रखते हुए आइए मानव विकास की अवधारणा पर चर्चा करते हैं।

क) मानव विकास

राष्ट्र संघ विकास लोगों को सुलभ विकल्पों के विश्लेषण की प्रक्रिया है। सिद्धांततः ये विकल्प असीम और कालावधि में बदल सकते हैं। पर विकास के सभी सोपान इस प्रकार हैं: (क) लोग दीर्घ और स्वस्थ जीवन जी सकें, (ख) वे ज्ञान अर्जित कर सकें, (ग) और एक संतोषजनक जीवन-स्तर हासिल करने के लिए जरूरी संसाधनों तक उनकी पहुंच। ये अनिवार्य विकल्प उपलब्ध नहीं हों, तो अन्य प्रकार के विकल्प के दरवाजे भी लोगों के लिए नहीं खुल पाते हैं। मानव विकास की इतिश्री यहीं पर नहीं हो जाती। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता से लेकर रचनात्मक और उत्पादक बनने और निजी आत्म-सम्मान और गारंटीशुदा मानवाधिकारों का आनंद उठाने तक ये तमाम अतिरिक्त विकल्प भी मानव विकास के अभिन्न अंग हैं।

यूएनडीपी के अनुसार मानव विकास दो पहलू हैं: (क) मानव क्षमताओं का निर्माण जैसे उन्नत स्वास्थ्य, ज्ञान और संसाधनों तक पहुँच। (ख) लोगों का इन क्षमताओं को उत्पादक कार्यों में लगाना, जैसे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मामलों में सक्रिय रहना।

मानव के विकास का तराजू अगर इन दोनों पलड़ों को बराबर संतुलन में रखकर नहीं चलेगा, तो इससे भारी मानव कुंठा पैदा होगी। मानव विकास की इस अवधारणा के अनुसार: "आमदनी एक विकल्प मात्र है, लोग जिसे लेना चाहेंगे, वह एक महत्व विकल्प जो है। पर यह उनके जीवन का निचोड़ नहीं। इसलिए विकास का मतलब लोगों की आमदनी और संपदा में इजाफे से अधिक होना चाहिए। यह लोगों पर केन्द्रित होना चाहिए। (वर्ही: 10)।

बॉक्स 1.2: विकास के प्रति मानवीय नजरिया

विकास के प्रति मानवीय नजरिया परंपरागत नजरियों से भिन्न है, जैसे: आर्थिक वृद्धि, मानव पूंजी निर्माण, मानव संसाधन विकास, मानव कल्याण मूलभूत मानवीय आवश्यकता संबंधी नजरिए। जैसा कि पीछे बताया गया है आर्थिक वृद्धि यानी उत्पादन (GDP) में वृद्धि मानव विकास के लिए आवश्यक तो है, पर्याप्त नहीं। मानव पूंजी निर्माण और मानव संसाधन विकास के सिद्धांत मनुष्य को एक साधन के रूप में देखते हैं, साध्य के रूप में नहीं। इनका सरोकार आपूर्ति के पक्ष से है। मानव कल्याण का नजरिया लोगों को विकास के लाभों का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता मान कर चलता है, उसमें भागीदार नहीं। मूलभूत आवश्यकता का नजरिया मानव विकल्पों के मुद्दे के बजाए आबादी के वंचित वर्गों की न्यूनतम बुनियादी जरूरतों जैसे भोजन, मकान, कपड़ा इत्यादि को पूरा करने पर जोर देता है। (यूएनडीपी 1990: 11)।

मानव विकास का नजरिया उत्पादन और संसाधनों के वितरण, मानव क्षमताओं के विस्तार और उपयोग, विकल्पों के विस्तार, आजीविका की सुरक्षा, भागीदारी की प्रक्रिया, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता इन सब को बराबर का महत्व देता है। यह एक राज्य की सामाजिक विकास की रणनीति में प्रतिमानात्मक बदलाव (Paradigm shift) की ओर इशारा करता है।

ख) बेरहम, जड़विहीन वृद्धि के प्रति चिंता

वृद्धि-विकास के पारंपरिक रास्ते में चलकर विश्व का ध्रुवीकरण और अधिक हुआ है। तथा गरीब और अमीर के बीच की खाई और गहरा गई है। अपनी मानव-विकास रिपोर्ट (1996) में यूएनडीपी कहती है, कि विश्व की निर्धनतम 20 प्रतिशत आबादी की आमदनी पिछले 30 वर्षों में 2.3 प्रतिशत से घटकर 1.4 प्रतिशत हो गई। इसके विपरीत सबसे धनी की आमदनी 70 प्रतिशत से 85 प्रतिशत हो गई। औद्योगिक और विकासशील देशों की प्रतिव्यक्ति आय में अंतर तीन गुना हो गया है। क्षेत्रीय असंतुलन अलग से है। यूएनडीपी ने 1990 दशक के उत्तरार्ध में इस रोजगार विहीन, बेरहम, बेआवाज, जड़विहीन और धनविहीन वृद्धि के प्रति चिंता प्रकट की है।

यह वृद्धि रोजगार विहीन रही क्योंकि इसमें अर्थ-व्यवस्था तो बढ़ी मगर इससे रोजगार के अवसरों में कोई विस्तार नहीं हुआ कि जिससे आबादी के बड़े हिस्से लाभान्वित हो सकें। विकासशील देशों में रोजगार विहीन वृद्धि का अर्थ लाखों लोगों का कृषि और अन्य औपचारिक क्षेत्रों में कम उत्पादकता वाले काम पर आश्रित रहना, जहां काम के घंटे तो ज्यादा होते हैं पर आमदनी बहुत कम। विकास की यह प्रक्रिया बेरहम बन गई क्योंकि आर्थिक वृद्धि का लाभ ज्यादातर धनी लोगों का ही मिला। लाखों-करोड़ों लोग गरीबी से अभिशाप्त हैं। इस तरह की बेरहम वृद्धि से लोगों की सांस्कृतिक पहचान मिटने लगी है। ऐसे में प्रभावी बहुसंख्यक संस्कृति को विस्तार तो मिला है, लेकिन अल्पसंख्यक संस्कृतियों की कीमत पर, जो हाशिए में धकेली जा रही हैं। यह वृद्धि बेआवाज भी है, क्योंकि कई जगह इसने निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की लोकतांत्रिक भागीदारी सुनिश्चित नहीं की है। इस बेआवाज प्रक्रिया में महिलाओं को आर्थिक विकास में हाशिये की भूमिका मिलती है। कुछ देशों में तेज आर्थिक वृद्धि वनों

के विनाश, नदियों के प्रदूषण, जैव-विविधता के विनाश और प्राकृतिक संसाधनों के शरण की कीमत पर हासिल की गई है। इस भविष्यविहीन वृद्धि में वर्तमान पीढ़ी उन संस्थानों की बर्बादी कर रही है, जिनकी जरूरत भावी पीढ़ियों को पड़ेगी। यह भविष्यविहीन वृद्धि औद्योगिक देशों को विकासशील देशों के गरीब लोगों की कीमत पर लाभ पहुंचा रही है। इन सब सच्चाईयों को ध्यान में रखते हुए यूएनडीपी का कहना है कि जो विकास मौजूदा असमानताओं को कायम रखता हो उसे न तो जारी रखा जा सकता है और न ही जारी रखा जाना चाहिए (मानव-विकास रिपोर्ट 1996:4)।

ग) स्वतंत्रता के रूप में विकास

यहां यह जानना जरूरी है कि विकास को अमर्त्य सेन (1999) जैसे अर्थशास्त्री किस प्रकार की स्वतंत्रता के रूप में देख रहे हैं। सेन के अनुसार विकास को लोगों को मिलने वाली वास्तविक स्वतंत्रता को बढ़ाने की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया है। वास्तविक आमदनी और आर्थिक वृद्धि का विस्तार जरूरी नहीं कि सफल विकास का परिचायक हो क्योंकि कुछ देश अधिक लाभ और प्रति-व्यक्ति आय प्राप्त तो कर लेते हैं, पर जीवन की गुणवत्ता के मामले में उनकी उपलब्धियां कम ही रहती हैं। दूसरी ओर ऐसे देश भी हैं जिनका लाभ और प्रति व्यक्ति आय दोनों कम हैं, पर मानव विकास सूचकों में आगे हैं। विकास का मुख्य प्रयोजन यहां लोगों के जीवन को उन्नत बनाना है, बेहतर बनाना है, जिसका तात्पर्य उन सभी चीजों को विस्तार देना है, जो आदमी कर सकता है। सेन के अनुसार विकास का लक्ष्य निरक्षरता, बीमारी, गरीबी, संसाधनों तक पहुंच की कमी, नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता की कमी इन सब बाधाओं को दूर करना है। वे इस बात को नहीं नकारते कि नियोजन और नीति निर्माण का प्रमुख लक्ष्य आर्थिक समृद्धि होना चाहिए। मगर यह एक मध्यवर्ती लक्ष्य मात्र है, जो विकास के अंतिम लक्ष्य यानी मानव जीवन के विकास को प्राप्त करने में सहायक बनेगा। विकास का मूल उद्देश्य और उसके प्रमुख साधन स्वतंत्रता का विस्तार करना, उसे नित नया आयाम देना है क्योंकि एक तरह की स्वतंत्रता अन्य तरह की स्वतंत्रताओं को बढ़ाने में सहायक होती है। आर्थिक वृद्धि में एक बड़ा कारक आर्थिक अवसरों तक पहुँच तो है ही, इस आर्थिक वृद्धि को मजबूत करने में सहायक स्वतंत्रताओं (जैसे राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक सुविधाएं, सामाजिक अवसर, पारदर्शिता की गारंटी और संरक्षी सुरक्षा) का योगदान रहता है और वहीं मानव की क्षमताओं की पूर्ण प्राप्ति में काम आने वाली सभी स्वतंत्रताओं का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा में यही आर्थिक वृद्धि करती है।

अभ्यास 1.5

मानव विकास का नजरिया विकास के वृद्धि नजरिए से किस तरह भिन्न है?

1.8 विकास रणनीतियों में प्रतिमानात्मक बदलाव

उपनिवेशोत्तर विकासशील देशों की विकास रणनीति में 1970 दशक के पूर्वार्ध से भारी बदलाव आया है। उदाहरण के लिए भारत ने स्वतंत्रता के तत्काल बाद “स्थिरता के साथ वृद्धि” की विकास रणनीति अपनायी। इसके तहत मुख्यतः औद्योगीकरण, कृषि के आधुनिकीकरण, ढाँचे के विस्तार, शिक्षा और जन संचार पर ध्यान दिया गया। लेकिन अजीविका की सुरक्षा, साक्षरता-शिक्षा, स्वास्थ्य-सुविधाओं, घर और जीवन की अन्य बुनियादी जरूरतों से आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा वंचित होने लगा तो 1970 के दशक से विकास संबंधी संवाद में “सामाजिक न्याय” के दर्शन को शामिल किया गया। यह महत्वपूर्ण बात है कि विकास का केन्द्रबिंदु समाज का वंचित तबका बन गया है। फिर 1990 के दशक की शुरुआत विशेषकर भूमंडलीकरण का सूत्रपात होने के बाद से हाशिए पर रह गए तबकों को मुख्यधारा में लाने के लिए “सशक्तीकरण के साथ विकास की रणनीति अपनायी गई है। (सिंहराय 2001)। अर्थ-व्यवस्था के समाजवादी मॉडल के धराशायी हो जाने तेजी से फैलते नव-उदार भूमंडलीकरण नए ढाँचेगत समायोजन

कार्यक्रमों की शुरुआत, विश्व व्यापार संगठन (WTO) के बनने और GATT और GATS जैसी संधियों के बन जाने से विकास की प्रक्रियाओं में भारी बदलाव आ गया है। इस नव-उदार विकासवाद ने विकास की अवधारणा को एक नया आयाम दे दिया है, जिसमें एक विश्व, एक बाज़ार और एक विचारधारा का दर्शन काम कर रहा है।

क) राज्य की भूमिका की पुनर्व्याख्या करना

विश्व विकास रिपोर्ट (1997) ने सामाजिक और आर्थिक विकास में राज्य की एक प्रभावशाली भूमिका की जरूरत पर बल दिया है, मगर उसे यह भूमिका एक नए रूप में निभानी होगी। इस रिपोर्ट के अनुसार राज्य आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए अनिवार्य है— वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रदाता के रूप में नहीं, बल्कि एक भागीदार, उत्प्रेरक और सुगमकारी के रूप में। दुनिया बदल रही है और उसके साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक विकास में राज्य की भूमिका को लेकर हमारे विचार भी बदल रहे हैं। राज्य द्वारा निर्देशित और नियंत्रित अर्थ-व्यवस्थाओं का धराशायी होना, कल्याणकारी राज्यों का वित्तीय संकट, विश्व के अनेक हिस्सों में मानवीय आपात-स्थितियों का विस्फोट, निजी निवेशकों में शासन-सरकार के प्रति बढ़ता अविश्वास, भ्रष्टाचार और गरीबी में वृद्धि, एक ओर विश्व अर्थ-व्यवस्था में प्रौद्योगिकीय बदलाव और दूसरी ओर जमीनी स्तर पर लाभबंदी का प्रकटन और नागरिक समाज का बढ़ता दबाव इन सब नाटकीय घटनाओं के मद्देनजर राज्य की जिम्मेदारियों को फिर से पुनर्भाषित करने की जरूरत समझी गई है ताकि इनमें से कुछ समस्याओं का समाधान किया जा सके। विश्व बैंक (1997) के अनुसार इसके लिए सामूहिक कारवाइयों का रणनीतिक चयन करना होगा, जिन्हें राज्य मिलजुलकर आगे बढ़ाएंगे। इसके साथ-साथ सामूहिक वस्तुओं-सेवाओं को पहुंचाने के लिए नागरिकों और समुदायों को शामिल कर राज्य के बोझ को हल्का करने की दिशा में प्रयास करने होंगे। विश्व बैंक आगे कहता है कि मानव कल्याण को बढ़ावा देने के लिए राज्य की क्षमता को बढ़ाना होगा। राज्य की इस क्षमता को सामूहिक कारवाइयों को निपुणता से अंजाम देने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया गया है।

ख) हाशिये पर धकेले गए तबकों के सशक्तीकरण पर ध्यान

विश्व विकास शिखर वार्ता (1995) “जन पहल”, “जन-सशक्तीकरण” और “जन-क्षमताओं को सशक्त” बनाने की बात करती है। विकास के उद्देश्यों के सिलसिले में शिखर वार्ता कहती है कि “लोगों, खासकर महिलाओं का सशक्तीकरण, उनकी क्षमताओं को मजबूत बनाना ही विकास का मुख्य उद्देश्य और संसाधन है। सशक्तीकरण के लिए समाज के संचालन और हित तय करने वाले निर्णयों को तय करने, उनके कार्यान्वयन और मूल्यांकन में पूर्ण जन-भागीदारी जरूरी है”। (वर्ल्ड डेवलपमेंट सम्मिट, 1995)।

पूर्ण जन भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए राज्य को “अंतर्राष्ट्रीय कानूनों दायित्वों के संगत संविधान, कानूनों और प्रविधियों के” अनुरूप “स्थिर कानूनी ढांचा” प्रदान करना होगा, जो “नागरिक समाज के स्वतंत्रता और प्रतिनिधि संगठनों के साथ भागीदारी को बढ़ावा दे, नागरिक समाज और स्थानीय समुदायों की क्षमताओं और अवसरों को मजबूती प्रदान करे ताकि वे अपने संगठनों, संसाधनों और क्रियाकलापों का विकास कर सकें” (वर्ल्ड डेवलपमेंट सम्मिट, 1995)।

यह स्पष्ट हो जाता है कि “स्थिर कानूनी ढाँचे”, राज्य द्वारा “सामूहिक कारवाई का रणनीतिक चयन”, “राज्य की नागरिक समाज के साथ संभावित भागीदारी और अपने संगठन बनाने के लिए नागरिक समाज की राज्य द्वारा प्रायोजित पहल” के इन परिप्रेक्ष्यों के मद्देनजर कुछ महत्वपूर्ण आयाम उभरते हैं। ये हैं: समाज के कमजोर, हाशिए में धकेले जा रहे वर्गों के सशक्तीकरण के लिए पहल राष्ट्र के प्रदत्त कानून के अनुरूप होनी चाहिए, (ख) जब और जैसी जरूरत पड़े राज्य जन-पहल को सहयोजित करेगा, (ग) हाशिए के तबकों के सशक्तीकरण में नागरिक

समाज संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। राज्य के सक्रिय हस्तक्षेप के अतिरिक्त, सशक्तीकरण के संग विकास के उभरते संवाद में नागरिक समाज महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

1.9 सारांश

विकास और प्रगति सामाजिक प्रक्रियाएं हैं। सारे विश्व में इन प्रक्रियाओं का स्वरूप एक-सा नहीं है क्योंकि भौगोलिक, आर्थिक तकनीकी और राजनीतिक उन्नति के आधार पर मानव समाज जगह-जगह फैला हुआ है। मगर तमाम भिन्नताओं के बावजूद समाजशास्त्री विकास और प्रगति के लिए व्यापक परिप्रेक्ष्यों को गढ़ने में प्रयत्नशील रहते हैं। इन परिप्रेक्ष्यों का स्वरूप कभी-कभी विरोधाभासी रहा है। इस इकाई में हमने विकास पर क्लासिक समाजशास्त्री चिंतकों के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों पर चर्चा की है। पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी दुनिया के देशों द्वारा प्रतिवादित और प्रयोग में लाए गए विकास के विभिन्न मॉडलों की चर्चा भी हमने यहां की है। 1970 के दशक उत्तरार्ध में विकास संबंधी परिप्रेक्ष्य में बदलाव आया और मानव विकास की अवधारणा और हाशिए के लोगों के सशक्तीकरण के साथ विकास की रणनीति भी उभरी है। आपने इन सबके बारे में भी इस इकाई में जाना। इस तरह से इस इकाई ने पाठ्यक्रम में आगे की इकाइयों में आने वाले विकास के समाजशास्त्र के विस्तृत विश्लेषण की भूमिका तैयार की है।

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दुबे, एस.सी. 1992, *अंडरस्टैंडिंग चेंज, विकास पब्लिशिंग हाउस; नई दिल्ली।*

मैकमाइकल, पी. 1996, *डेवलपमेंट एंड सोशल चेंज: ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव, फाइन फोर्ज प्रेस: थाउजैंड ओक्स।*

सिंहराय, डी.के. 2003, *सोशल डेवलपमेंट एंड द एंपावरमेंट ऑफ द मार्जिनलाइज्ड ग्रुप्स: पर्सपेक्टिवस एंड स्ट्रेटजीज, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।*